Toppersnotes®
Unleash the topper in you

BPSC

TRE 4.0

हिन्दी भाषा शिक्षक (कक्षा 11-12)

(हिन्दी विषय शिक्षक)

भाग - 3

SIERRA INNOVATIONS

INDEX

क्र.सं.	अध्याय	पृष्ठ सं.
	हिन्दी कविता	
1.	रेवा तट (चंद्रबरदाई)	1
2.	अमीर खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ	1
3.	विद्यापति की पदावली (संपादक - डॉ. नरेन्द्र झा)	2
4.	कबीर (संपादक - हजारीप्रसाद द्विवेदी)	3
5.	जायसी ग्रंथावली (संपादक - रामचंद्र शुक्ल)	5
6.	सुरदास भ्रमरगीत सार (संपादक - रामचंद्र शुक्ल)	9
7.	तुलसीदास (रामचरितमानस -उत्तरकाण्ड)	14
8.	बिहारी सतसई (संपादक - जगन्नाथदास रत्नाकर)	17
9.	घनानंद कवित्त (संपादक - विश्वनाथ मिश्र)	18
10.	मीरा (संपादक - विश्वनाथ त्रिपाठी)	19
11.	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' **(**प्रियप्रवास)	19
12.	मैथिलीशरण गुप्त	22
13.	कामायनी	26
14.	निराला	29
15.	सुमित्रानंदन पंत	30
16.	महादेवी वर्मा	31
17.	रामधारी सिंह दिनकर	31
18.	नागार्जुन	38
19.	सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'	39
20.	भवानीप्रसाद मिश्र	40
21.	मुक्तिबोध	40
22.	धूमिल	43
	हिन्दी उपन्यास	
1.	हिन्दी उपन्यास का विकास	49
2.	देवरानी-जेठानी की कहानी - पण्डित गौरीदत्त	50
3.	परीक्षा गुरु - लाला श्रीनिवास दास	52
4.	शेखर : एक जीवनी अज्ञेय	55
5.	बाणभट्ट की आत्मकथा - हजारीप्रसाद द्विवेदी	56
6.	'मैला आँचल' **-** फणीश्वरनाथ 'रेणु' '	58
7.	झूठा - सच' यशपाल	59
8.	'मानस का हंस' **-** अमृतलाल नागर	61
9.	'तमस' **-** भीष्म साहनी	62
10.	'राग दरबारी - श्रीलाल शुक्ल	63
11.	'जिन्दगीनामा' **–** कृष्णा सोबती	65
12.	'आपका बंटी' **-** मन्नू भण्डारी	66
13.	'धरती धन न अपना'**-** जगदीश चन्द्र	67

हिन्दी कहानी		
1.	चन्द्रदेव से मेरी बातें (बंग महिला / राजेन्द्र बाला घोष)	75
2.	एक टोकरी -भर मिट्टी (माधवराव सप्रे)	75
3.	राही (सुभद्रा कुमारी चौहान)	78
4.	ईदगाह (प्रेमचंद)	78
5.	कानों में कँगना (राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह)	78
6.	उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा गुलेरी)	79
7.	आकाशदीप (जयशंकर प्रसाद)	79
8.	अपना अपना भाग्य (जैनेन्द्र कुमार)	80
9.	फणीश्वरनाथ रेणु	80
10.	गैंग्रीन / रोज (अज्ञेय)	80
11.	कोसी का घटवार (शेखर जोशी)	81
12.	अमृतसर आ गया है (भीष्म साहनी)	81
13.	सिक्का बदल गया (कृष्णा सोबती)	82
14.	इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर (हरिशंकर परसाई)	82
15.	पिता (ज्ञानरंजन)	82
16.	राजा निरबंसिया (कमलेश्वर)	83
17.	परिंदे (निर्मल वर्मा)	83
हिन्दी नाटक		
1.	अंधेर नगरी **–** भारतेन्दु	84
2.	भारत दुर्दशा – भारतेन्दु	87
3.	स्कन्दगुप्त – जयशंकर प्रसाद	88
4.	चन्द्रगुप्त – जयशंकर प्रसाद	90
5.	ध्रुवस्वामिनी – जयशंकर प्रसाद	91
6.	अन्धा युग – धर्मवीर भारती	91
7.	सिन्दूर की होली – लक्ष्मी नारायण मिश्र	92
8.	आधे-अधूरे – मोहन राकेश	93
9.	आषाढ़ का एक दिन – मोहन राकेश	93
10.	आगरा बाजार – हबीब तनवीर	93
11.	बकरी – सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	94
12.	एक और द्रोणाचार्य - शंकर शेष	94
13.	अंजो दीदी - उपेन्द्रनाथ अश्क	95
14.	महाभोज – मन्नू भंडारी	95
हिन्दी निबंध		
1.	भारतेन्दु – दिल्ली दरबार दर्पण**,** भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है	97
2.	प्रताप नारायण मिश्र - शिवमूर्ति	109
3.	बाल कृष्ण भट्ट – शिवशंभु के चिट्ठे	113
4.	रामचन्द्र शुक्ल - कविता क्या है	117

5.	हजारी प्रसाद द्विवेदी - नाखून क्यों बढ़ते हैं	122
6.	विद्यानिवास मिश्र – मेरे राम का मुकुट भीग रहा है	124
7.	अध्यापक पूर्ण सिंह - मजदूरी और प्रेम	128
8.	कुबेरनाथ राय – उत्तराफाल्गुनी के आस-पास	135
9.	विवेकी राय - उठ जाग मुसाफिर	148
आत्मकथा, जीवनी तथा अन्य गद्य विधाएं		
1.	हिन्दी के प्रमुख लेखक एवं उनके यात्रावृत्त	154
2.	आत्मकथा	155
3.	तुलसी राम **–** मुर्दहिया	156
4.	मन्नू भण्डारी **–** एक कहानी यह भी	156
5.	हरिवंशराय बच्चन **–** क्या भूलूँ क्या याद करूँ	156
6.	रमणिका गुप्ता **–** आपहुदरी	157
7.	शिवरानी देवी **–** प्रेमचन्द घर में	157
8.	विष्णु प्रभाकर **–** आवारा मसीहा	158
9.	मुक्तिबोध **–** साप्ताहिक की डायरी	158
10.	रामधारी सिंह दिनकर **–** संस्कृति के चार अध्याय	158
11.	हरिशंकर परसाई **–** भोलाराम का जीव	159
12.	कृष्ण चन्दर **–** जामुन का पेड़	159
13.	राहुल सांकृत्यायन **–** मेरी तिब्बत यात्रा	159
14.	अज्ञेय **–** अरे यायावर रहेगा याद	160
15.	रामवृक्ष बेनीपुरी – माटी की मूरतें	160
16.	महादेवी वर्मा **–** ठकुरी बाबा	162

1 CHAPTER

हिन्दी कविता : पाठ (टेक्स्ट)

रेवा तट (चंद्रबरदाई)

'रेवा तट' चंद्रबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' का सत्ताइसवाँ समय (सर्ग) है। इस सर्ग में पृथ्वीराज चौहान के रेवा तट (नर्मदा) के समीप वन में शिकार खेलने जाने तथा वहाँ शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी से युद्ध का विस्तुत वर्णन है। 'रेवा तट' पर हुए युद्ध में पृथ्वीराज की विजय होती है, फलस्वरूप मुहम्मद गौरी को बंदी बना लिया जाता है। 'रेवा तट' का मुख्य विषय पृथ्वीराज और गौरी का युद्ध है तथा इसका प्रधान रस वीर रस है। परिचय हेतु एक उद्धरण दिया जा रहा है–

- देवगिरि जीते सुभट, आयौ जामंड राइ।
  जय जय नृप कीरति सकल, कही कव्विजन गाइ।।
  मिलट राज प्रथिराज सों कही राव चामंड।
  रेवातट जो मन करौ, (तौ) वन अपुब्ब गज झुंड।।

अमीर खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ

मुकरियाँ

- लिपट लिपट के वा के सोई
  छाती से छाती लगा के रोई
  दाँत से दाँत बजे तो ताड़ा
  ऐ सखि साजन ? ना सखि जाड़ा!
- रात समय वह मेरे आवे
  भोर भये वह घर उठि जावे
  यह अचरज है सबसे न्यारा
  ऐ सखि साजन ? ना सखि तारा!

बूझ–अनबूझ पहेलियाँ

- गोश्त क्यों न खाया ?
  डोम क्यों न गया ?
  उत्तर–गला न था
- जूता पहना नहीं
  समोसा खाया नहीं
  उत्तर–तला न था
- अनार क्यों न चखा ?
  वज़ीर क्यों न रखा ?
  उत्तर – दाना न था
  (अनार का दाना और दाना बुद्धिमान)
- सौदागर चे मे बायद ? (सौदागर को क्या चाहिये)
  बूचे (बहरे) को क्या चाहिये ?
  उत्तर– (दो कान भी दुकान भी)
- तिश्नारा चे मे बायद ? (प्यासे को क्या चाहिये)
  मिलाप को क्या चाहिये
  उत्तर– चाह (कुआँ भी और प्यार भी)
- शिकार ब चे मे बायद करद ? (शिकार किस चीज से करना चाहिये)
  कुव्वते मग्ज को क्या चाहिये ? (दिमागी ताकत को बढ़ाने के लिये क्या चाहिये)
  उत्तर– बा–दाम (जाल के साथ) और बादाम
- रोटी जली क्यों ? घोड़ा अड़ा क्यों ? पान सड़ा क्यों?
  उत्तर– फेरा न था
- पंडित प्यासा क्यों ? गधा उदास क्यों ?
  उत्तर– लोटा न था
- उज्जवल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
  देखत मैं तो साधु है, पर निपट पाप की खान।।
  उत्तर– बगुला (पक्षी)
- एक नारी के हैं दो बालक, दोनों एकहि रंग।
  एक फिर एक ठाढ़ा रहे, फिर भी दोनों संग।
  उत्तर– चक्की।
- आगे–आगे बहिना आई, पीछे–पीछे भइया।
  दाँत निकाले बाबा आए, बुरका ओढ़े मइया।।
  उत्तर–भुट्टा
- चार अंगुल का पेड़, सवा मन का फ्ता।
  फल लागे अलग अलग, पक जाए इकट्ठा।।
  उत्तर– कुम्हार की चाक
- अचरज बंगला एक बनाया, बाँस न बल्ला बंधन धने।
  ऊपर नींव तने घर छाया, कहे खुसरो घर कैसे बने।।
  उत्तर– बयाँ पंछी का घोंसला
- माटी रौदूँ चक धरूँ, फेरूँ बारम्बर।
  चातुर हो तो जान ले मेरी जात गँवार।।
  उत्तर– कुम्हार
- गोरी सुंदर पालती, केहर काले रंग।
  ग्यारह देवर छोड़ कर चली जेठ के संग।।
  उत्तर– सुपारी
- बाल नुचे कपड़े फटे मोती लिये उतार।
  यह बिपदा कैसी बनी जो नंगी कर दई नार।।
  उत्तर–भुट्टा (छल्ली)
- एक नार कुएँ में रहे,
  वाका नीर खेत में बहे।
  जो कोई वाके नीर को चाखे,
  फिर जीवन की आस न राखे।।
  उत्तर– तलवार

- एक जानवर रंग रंगीला,
  बिना माने वह रोवे।
  उस के सिर पर तीन तिलाके,
  बिन बताए सोवे।।
  उत्तर–मोर
- चाम मांस वाके नहीं नेक,
  हाड़ मांस में वाके छेद।
  मोहि अचंभो आवत ऐसे,
  वामें जीव बसत है कैसे।।
  उत्तर–पिंजड़ा
- स्याम बरन की है एक नारी,
  माथे ऊपर लागै प्यारी।
  जो मानस इस अरथ को खोले,
  कुत्ते की वह बोली बोले।।
  उत्तर– भौं (भौएँ आँख के ऊपर होती हैं।)
- एक गुनी ने यह गुन कीना,
  हरियल पिंजरे में दे दीना।
  देखा जादूगर का हाल,
  डाले हरा निकाले लाल।
  उत्तर– पान
- एक थाल मोतियों से भरा,
  सबके सर पर औंधा धरा।
  चरों ओर वह थाली फिरे,
  मोती उससे एक न गिरे।
  उत्तर–आसमान
- गोल मटोल और छोटा–मोटा,
  हर दम वह तो जमीं पर लोटा।
  खुसरो कहे नहीं है झूठा,
  जे न बूझे अकिल का खोटा।।
  उत्तर–लोटा
- श्याम बरन और दाँत अनेक,
  लचकत जैसे नारी।
  दोनों हाथ से खुसरो खींचे,
  और कहे तु आ री।।
  उत्तर– आरी
- हाड़ की देही उज रंग,
  लिपटा रहे नारी के संग।
  चोरी की ना खून किया,
  वाका सर क्यों काट लिया
  उत्तर– नाखून
- बाला था जब सबको भाया,
  बड़ा हुआ कुछ काम न आया।
  खुसरो कह दिया उसका नाव,
  अर्थ करो नहीं छोड़ज़ै गाँव।।
  उत्तर– दिया
- नारी से तू नर भई और श्याम बरन भई सोय।
  गली–गली कूकत फिरे कोइलो–कोइलो लोय।।
  उत्तर– कोयल
- एक नार तरवर से उतरी,
  सर पर वाके पाँव।
  ऐसी नार कुनार को,
  मैं ना देखन जाँव।।
  उत्तर– मैना
- सावन भादों बहुत चलत है,
  माघ पूस में थारी।
  अमीर खुसरों यूँ कहें,
  तु बूझ पहेली मोरी।।
- तरवर से इक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया
  बाप का उससे नाम जो पूछा आधा नाम बताया
  आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मोरी
  अमीर खुसरो यूँ कहें अपना नाम नबोली
  उत्तर– निम्बोली

विद्यापति की पदावली (संपादक–डॉ. नरेन्द्र झा)

वंदन

- नन्दक नन्दक कदम्बक तक–तर।
  घिरे घिरे मुरलि बजाव।।
  समय संकेत–निकेतल बइसल।
  वेरि वेरि बोति पठाव।।
  सामरि, तोरा लागि।
  अनुखन विकल मुरारि।।
  जमुनाक तिर उपवन उदवेगल।
  फिरि फिरि ततहि निहारि।।
  गोरस बेचए अवइत जाइत।
  जनि जनि पुछ बनमारि।।
  तोहे मतिमान, सुमति, मधुसूदन।
  वचन सुनह किछु मोरा।।
  भनइ विद्यापति सुन बरजौवति।
  बन्दह नन्द–किसोरा।।

राधा की वंदना

- देख देख राधा रूप अपार।
  अपुरूब के बिहि आनि मिलाओल
  खिति–तल लावनि–सार
  अगहि अंग अनंग मुरछायत ।
  हेरए पड़ए अथीर।।
  मनमथ कोटि–मथन करु जे जन।
  से हेरि महि–मधि गीर।।
- सैसव जौवन दुहु मिलि गेल।
  स्रवन क पथ दुहु लोचन लेल।।
  वचन क चातुरि लहु–लहु हास।
  धरनिये चाँद कएल परगास।।
  मुकुर लई अब करई सिंगार।
  सखि कुछइ कइसे सुरत–विहार।।
  निरजन उरज हेरइ कत वेरि।

- हसइ से अपन पयोध हेरि।।
  पहिल वदरि–सम पुन नवरंग।
  दिन–दिन अनंग अगोरल अंग।।
  माधव पेखल अपुरुब वाला।
  सैसव जौवन दुहु एक भेला।।
  विद्यापति कह तह अगेआनि।
  दुहु एक जोग हइ के कह सयानि।।

कबीर (संपादक–हजारीप्रसाद द्विवेदी)

- लोका मति के भोरा रे।
  जो कासी तन तजै कबीरा,
  तौ रामहिं कहा निहोरा रे।
  तब हम वैसे अब हम ऐसे,
  इहै जनम का लाहा रे।
  रा–भगति–परि जाकौ हित चित
  ताकौ अचिरज काहा रे।
  गुरु–परसाद साध की संगति,
  जन जीतें जाइ जुलाहा रे।
  कहै कबीर सुनहु रे संतो,
  भ्रंमि परै जिनि कोई रे।
  जस कासी तस मगहर ऊसर,
  हिरदै राम सति होई रे।
- पूजा–सेवा–नम–व्रत, गुड़ियन का–सा खेल।
  जब लग पिउ परसै नहीं, तब लग संसय मेला।।
  जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ज्ञान।
  मेल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान।।
  हस्ती चढ़िए ज्ञान कौ, सहन दुलीचा डारि।।
  स्वान–रूप संसार है, भूँकन दे झक मारि।।
- मेरा–मेरा मनुआँ कैसे इक होई रे।
  मैं कहता हो आँखिन देखी, तू कहता कागद की देखी।
  मैं कहता सुरझावनहारी, तु राख्यौ उरझाई रे।
  मैं कहता तू जागत रहियो, तू जाता है सोही रे।
  मैं कहता निमौहि रहियो, तू जाता मोही रे।
  जुगन जगन समुझावत हारा, कही न मानत कोई रे।
  तु तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारे खोई रे।
  सतगुरु धारा निर्मल बाहै, वामैं काया धोई रे।
  कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।
- मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
  पाँच वत्त की बनी चुनरिया, सोरहसै बँद लागे जिया।
  यह चुनरी मोरे मैकेतें आई, ससुरे में मनुवा खोय दिया।
  मलि मलि धाई दाग न छूटे, ज्ञान को साबुन लाय पिया।
  कहैं कबीर दाग कब छुटि है, जब साहब अपनाय लिया।
- तेरा जन एक आध है कोई।
  काम–क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद, चीन्हैं सोई।।
  राजस–तामस–सातिग तीन्यूँ, ये सब तेरी माया।
  चौथे पद कौं जे जन चीन्हैं, तिनहि परम पद पाया।
- असतुति–आसा छाँड़ै, तजै मान अभिमाना।
  लोहा–कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवाना।।
  च्यतै तो माधौ च्यंतामणि हरिपद रमैं उदासा।
  त्रिसनां अरु अभिमान रहित है कहै कबीर सो दासा।।
- साधो, देखो जग बौराना।
  साँची कहौ तौ मारन धावै झूँठे जग पतियाना।
  हिन्दू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमाना।
  आपस मैं दोऊ लड़े मरतु हैं मरम कोई नहिं जाना।
- बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी प्रात करैं असनाना।
  आतम–छोड़ि पशानै पूजैं तिनका थोथा ज्ञाना।
  आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन में बहुत गुमाना।
  पीपर–पाथर पूजन लागे तीरथ–बर्त भुलाना।
  माला पहिरे टोती पहिरे छाप–तिलक अनुमाना।
  साखी सब्दै गावत भूते आतम खबर न जाना।
  घर–घर मंत्र जो देन फिरत हैं माया के अभिमाना।
  गुरुवा सहित शिष्य सब बूड़े अंतकाल पछिताना।
  बहुतक देखे पीर–औतिया पढ़ै किताब–कुराना।
  करै मुरीद कबर बतलावैं उनहूँ खुदा न जाना।
- हिन्दू की दया मेहर तुरकन की दोनों घर से भागी।
  वह करै जिबह वाँ झटका मारे आग दोऊ घर लागी।
  या बिधि हँसत चलत हैं हमको आप कहावैं स्याना।
  कहै कबीर सुनों भाई साधो, इनमें कौन दिवाना।
- चली मैं खोज में पिया की। मिटी नहिं सोच यह जिय की।।
  रहे नित पास की मेरे। न पाऊँ यार को हेरे।।
  बिकल चहूँ ओर को धाऊँ। तबहूँ नहिं कंत को पाऊँ।।
  धरों केहि भाँति सो धीरा। गयौ गिर हाथ से हीरा।।
  कटी जब नैन की झाईं। लक्ष्यौं तब गगन में साईं।।
  कबीर शब्द कहि त्रासा। नयन में यार को बासा।।
- तलफै बिन बालम मोर जिया।
  दिन नहिं चैन रात नहिं निंदया,
  तलफ तलफ के भोर किया।।
  तन मन मोर रहँट–अस डोलै,
  सुन्न सेज पर जनम छिया।
  नैन थकित भये पंथ न सूझै,
  साँईं बेदरदी सुध न लिया।।
  कहत कबीर सुनो भाई साधो,
  हरो पीर दुःख जोर किया।।
- नैना अंतरि आव तूँ, ज्यों हौं नैन झँपेऊँ।
  ना हौं देखौं और कूँ, नाँ तुझ देखन देऊँ।। 1।।
  कबीर रेख सिंदूर की काजल दिया न जाइ।
  नैनूँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ।। 2।।
  मन परतीति न प्रेम–रस, नाँ इस तन में ढंग।
  क्या जाणौं उस पीवसूँ, कैसैं रहसी रंग।। 3।।
- नैनों की करि कोठरी, पुतरी पलँग बिछाय।
  पलकों की चिक डारिकै, पिया को लिया रिझाय।।1।।
  प्रीतम को पतिया लिखूँ, जो कहूँ होय विदेस।
  तन में मन में नैन में, ताकौं कहा सँदेस ।। 2।।

- अँखियाँ तो झाईं परी, पंथ निहारि निहारि।
  जीभड़ियाँ छाला पड़्या नाम पुकारि पुकारि।। 1।।
  बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैन।
  माँगै दरस मधूकरी, छके रहैं दिन–रैन।। 2।।
  सब रंग ताँत रबाब तन, बिरह बजाबै नित्त।
  और न कोई सुनि सकै, कै साईं कै चित्त।। 3।।
- कैसे दिन कटिहैं जतन बताये जइयो।
  एहि पर गंगा ओहि पर जमुना,
  बिचवाँ मड़इया हमकाँ छवाये जइयो।
  अँचरा फारिके कागज़ बनाइन,
  अपनी सुरतिया हियरे, लिखाये जइयो।
  कहत कबीर सुनो भाई साधो,
  बहियाँ पकरिकें रहिया बताये जइयो।
- भींजै चुनरिया प्रेम–रस बूँदन।
  आरत साज के चली है सुहागिन पिया अपने को ढूँढ़न।
  काहे की तौरी बनी चुनरिया काहे को लगे चारों फूँदन।
  पाँच तत्त की बनी चुनरिया नाम के लागे फूँदन।
  चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया दास कबीर लागे झूलन।।
- मैं अपने साहब संग चली।
  हाथ में नरियल मुख में बीड़ा, मोतियन माँग भरी।
  लिल्ली घोड़ी जरद बद्देड़ी, तापै चढ़ि के चली।
  नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरत जनम सुधरी।
  कहै कबीर सुनो भाई साधो, दोउ कुल तारि चली।
- गुरु मोहिं घुँटिया अजर पियाई।
  गुरु मोहिं घुँटिया पियाई, भई सुचित मेटी दुचिताई।
  नाम–औषधी अधर–कटोरी, पियत अधाय कुमति गई मोरी,
  ब्रह्मा–बिस्नु पिये नहीं पाये, खोजत संभू जन्म गँवाये।
  सुरत नितर करि पियै जौ कोई, कहैं कबीर अमर होय सोई।।
- कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
  सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाइ।। 1।।
  हरि–रस पीया जाणिये, जे कबहूँ न जाइ खुमार।
  मैमंता घूमत रहे, नाहीं तन की सार ।। 2।।
  सबै रसायण मैं किया, हरि–सा और न कोइ।
  तिल इक घट मैं संचरै, तो सब कंचन होइ ।। 3 ।।
- पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
  आगे थैं सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि।। 1।।
  दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
  पूरा किया बिसाहुणां, बहुरि न आवौं हट्ट।। 2।।
  कबीर गुरु गरवा मिल्या, रलि गया आटे लूँण।
  जाति–पाँति–कुल सब मिटै, नाँव धरौगे कौंण।। 3।।
  सतगुरु हमसूँ रीझि करि एक कह्या परसंग।
  बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग।। 4।।
- मेरी अँखियाँ जांन सुजांन भई।
  देवर ननद सुसर संग तजि करि, हरि पीव तहाँ गई।।
  बालपनैं के करम हमारे, काटे जानि दई।
  बाँह पकरि करि किरपा कीन्हीं, आप समींप लई।।
  पानी की बूँदथे जिनि प्यँड साज्या, ता संगि अधिक रई।।
  दास कबीर पल प्रेम न घटई, दिन–दिन प्रीति नई।।
- मोरे लगि गए बान सुरंगी हो।
  धन सतगुरु उपदेश दियो है, होइ गयो चित्त भिरंगी हो।
  ध्यान पुरुष की बनी है तिरिया, घायल पाँचों संगी हो।।
  घायल की गति घायल जाने, की जानै जात पतंगी हो।
  कहैं कबीर सुनो भाई साधो, निसि दिन प्रेम उमंगी हो।।
- पिया मेरा जागे मैं कैसे सोई री।
  पाँच सखी मेरे संग की सहेली,
  उन रँग रँगी पिया रंग न मिली री।।
  सास सयानी ननद देवरानी,
  उन डर डरी पिय सार न जानी री।
  द्वादस ऊपर सेज बिछानी,
  चढ़ न सकौं मारी लाजल जानी री।।
  रात दिवस मोहिं कूका मारे,
  मैं न सुनी रचि नहि संग जानी री।
  कहैं कबीर सुनु सखी सयानी,
  बिन सतगुरु पिया मिले न मिलानी री।।
- बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
  जिय तरसै तुझ मिलन कूँ, मनि नाहीं बिसराम।। 1।।
  बिरहिनि ऊठै भी पड़े, दरसन कारनि राम।
  मूवा पीछे देहुगे, सो दरसन केहि काम ।। 2।।
  मूवा पीछे जिनि मिले, कहै कबीरा राम।
  पाथर–घाटा–लोह, सब पारस कौणैं काम ।। 3।।
  बासरि सुख ना रैंणि सुख, ना सुख सुपिनै माहिं।
  कबीर बिछुट्या रामसूँ, ना सुख धूप न छाँहि।। 4।।
- परबति परबति में फिर्या, नैन गँवाए रोइ।
  सो बूटी पाऊँ नहीं, जातैं जीवन होई।। 1।।
  नैन हमारे जलि गए, छिन छिन लोड़ै तुज्झ।
  नाँ तूँ मिलै न मैं खुसी ऐसी बेदन मुज्झ।। 2।।
  सुख्या सब संसार है खाये अरु सावै।
  दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै।। 3।।
- कबिरा प्याला प्रेम का, अंतर दिया लगाय।
  रोम रोम में रमि रह्या, और अमल क्या खाय।। 1।।
  राता–माता नाम का, पीया प्रेम अघाय।
  मतवाला दीदार का, माँगै मुक्ति बलाय।। 2।।

- ऐ कबीर, तैं उतरि रहु, संबल परो न साथ।
  संबल घटे न पगु थकें, जीव बिराने हाथ।। 1।।
  कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहली गैल।
  पाँव न टिकै पिपीलिका, खलकन लादे बैल।। 2।।
- काल खड़ा सिर ऊपरे, जागु बिराने मीत।
  जाका घर है गैल में, सो कस सो निचीत।
- नैहर मैं दाग लगाय आय चुनरी।
  ऊ रँगरेजवा कै मरम न जानै,
  नहिं मिलै धोबिया कौन करै उजरी।
  तन कै कूँडी ज्ञान कै सौंदन
  साबुन महँग बिचाय या नगरी।
  पहिरि–ओढ़िके चली ससुररिया,
  गौवाँ के लोग कहैं बड़ी फुहरी।
  कहैं कबीर सुनो भाई साधो,
  बिना सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी।
- अपनपौ आप ही बिसरो।
  जैसे सोनहा काँच मंदिर मैं भरमत भूँकि मरो।
  जो केहरि बपु निरखि कूल–जल प्रतिमा देखि परो।
  ऐसेहिं मदगज फटिक शिला पर दसननि आनि अरो।
  मरकट मुठी स्वाद ना बिसरै घर घर नटत फिरो।
  कह कबीर ललनी कै सुवना तोहि काने पकरो।

जायसी ग्रंथावली (संपादक–रामचंद्र शुक्ल)

- आचार्य शुक्ल द्वारा संपादिक पद्मावत (जायसी ग्रंथावली) का 30 वाँ खंड नागमती–वियोग खंड है।
- पद्मावत में श्रृंगार का वियोग पक्ष तीन चरित्रों के माध्यम से दिखाया गया है – रत्नसेन, पद्मावती तथा नागमती।
- जायसी ने नागमती के विरह का विस्तृत वर्णन किया है जो बेहद रमणीय, सुंदर व मार्मिक है। नागमती रत्नसेन की पत्नी है जो रत्नसेन के पद्मावती की खोज में सिंहलद्वीप जाने पर एक वर्ष तक पति से अलग रहने के कारण विरह वेदना भोगती है। सच यह है कि जायसी का भावुक मन नागमती के वियोग में ही अधिक रमा है। इस संबंध में शुक्ल जी की स्पष्ट धारणा है कि – ''नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है''।
- नागमती के विरह–वर्णन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह मानी गई है कि इसमें नागमती को रानी के रुप में नहीं, एक साधारण विरहदग्ध नारी के रुप में वर्णित किया गया है। शुक्ल जी कहते हैं–''अपनी भावुकता का बड़ा भारी परिचय जायसी ने इस बात में दिया है कि रानी नागमती विरहदशा में अपना रानीपन बिल्कुल भूल जाती है और अपने को केवल साधारण नारी के रुप में देखती है। इसी सामान्य स्वाभाविक वृत्ति के बल पर उसके विरहवाक्य छोटे–बड़े सबके हदय को समान रुप में स्पर्श करते हैं।''
- नागमती के विरह– वर्णन की एक और प्रमुख विशेषता यह है कि उसका विरह केवल वैयक्तिक संयोग सुख की प्रेरण पर आधारित नहीं है बल्कि जीवन के लोक–व्यवहारों तथा कर्त्तव्यों से जुड़ा हुआ है। नागमती मध्यकाल की एक हिन्दू नारी है जिसके जीवन की सारी सार्थकता उसके पति में केंद्रित है।
- नागमती के वियोग में इस गार्हस्थिक चेतना ने अद्भुत मार्मिकता का समावेश कर दिया है।
- विरह–वर्णन में फारसी मसनवियों की शैली प्रायः ऊहात्मक हो जाती है। ऊहात्मकता का अर्थ है–विरह का ऐसा अतिषयोक्तिपूर्ण वर्णन जो असामान्य होने के साथ–साथ कहीं–कहीं कुरुचिपूर्ण या चुगुप्सापूर्ण होने लगे। नागमती के विरह वर्णन में जायसी ने ऊहात्मकता का सहारा तो लिया है किन्तु उसे कहीं भी मज़ाक का विषय नहीं बनने दिया है।

पद्मावत (नागमती वियोग खंड से)

- नागमती चितउर पथ हेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा।।
  नागर काहु नारि बस परा। तेई मोहि, पिय मौ सों हरा।।
  सुआ काल होइ लेइगा पीऊ। पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ।।
  भएउ नरायन बावँन करा। राज करत राजा बलि छरा।।
  करन पास लीन्हेउ के छंदू। बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू।।
  मानत भोग गोतिचँद भोगी। लेइ अपसवा जलंधर जोगी।।
  लेइगा कृस्नहि गरुडऋ अलोपी। कठिन बिछोह, जियहिं किमि गोति।।
  सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह ?
  झुरि झुरि पींजर हौं भई, बिरह काल माहि दीन्हा ।। 1।।
  - ✓ भारतीय पौराणिक कथाओं का प्रयोग
- पिउ बियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा निति बोलै 'पिउ पीऊ'।।
  अधिक काम दाधै सो रामा। हरि लेइ सुवा गएउ पिउ नामा।।
  हिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज, भीजि गई चोली।।
  सूखा हिया, हार भा भारी। हरि हरि प्रान तजहिं सब नारी।।
  खन एक आव पेट महँ! सांसा। खनहिं जाइ जिउ, होइ निरासा।।
  पवन डोलावहिं सीचहिं चोला। पहर एक समुझहिं मुख बोला।
  प्रान प्यान होत को राखा ? को सुनाव पीतम के भाखा ?
  आहि जो मारै बिरह कै, आणि उठै तेहि लागि।
  हंस जो रहा सरीर महँ, पाँख जार, गा भागि।। 2।।
  - ✓ अलंकार–रुपक, अतिशयोक्ति

- पाट महादेइ! थ्हये ना हारु। समुझि जीउ, जित चेतु सँभारु।।
  भौर कँवर सँग होइ मेरावा। सँवरि नेह मालति पहँ आवा।।
  पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती। टेकु पियास, बाँधु मन थीती।।
  धरतिहि जैस गगन सौं नहा। पलटि आव बरशा ऋतु मेहा।।
  पुनि बसंत ऋतु आव नवेली। सो रस, सो मधुकर, सो बेली।।
  जिनी अस जीव करसि तू बारी। यह तरिवत पुनि उठिहि सँवारी।।
  दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा। पुनि सोई सरवर, सोई हंसा।।
  मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत।
  तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पतुहंत।। 3।।
  - ✓ अलंकार–उपमा व दृष्टांत
- चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।।
  धूम, साम, धौरे घन घाए। सेत धजा बग–पाँति देखिए।।
  खड़ग बीचु चमकै चहुँ औरा। बूंद–बान बरसहिं घन घोरा।।
  ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारु मदन हौं घेरी।।
  दादुर मोर कोकिला, पीऊ। गिरै बीचु, घट रहै न जीऊ।।
  पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हों बिनु नाह, मँदिर को छावा ?।।
  अद्रा लाग लागि भुइँ लेई। मोहिं बिनु पिउ को आदर देई ?।।
  जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
  कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब।। 4।।
  - ✓ बारहमासा वर्णन – आषाढ़
  - ✓ अलंकार – उत्प्रेक्षा
- सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी।।
  लाग पुनरबसु पीउ न देखा। भाइ बाउरि, कहँ कंत सरेखा ?।।
  रकत कै आँसु परहिं भुहँ टूटी। रेंगि चलीं जस बीरबहूटी।।
  सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियरि भूमि, कुसुंभी चोला।।
  हिय हिंडोल अस डोलै मौरा। बिरह झुलाइ देइ झकझोरा।।
  बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर, भा फिरै भँभीरी।।
  जग जल बूड़ लहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।।
  परबत समुद अगम बिच, बीहड़ वन बनढाँख।
  किमी के भेंटौं कंता तुम्ह ? ना मोहिं पाँव न पाँख ।। 5।।
  - ✓ बारहमासा वर्णन : सावन (श्रावन)
  - ✓ अलंकार–अत्प्रेक्षा ?
- भा भादौं दुभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अँधियारी।।
  मँदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि डसा।।
  रहौं अकेलि गहे इक पाटी। नैन पसारि मरों हिया फाटी।।
  चमक बीजु, घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा।।
  बरसै मघा झकोरि झकोरी। मौरि दुइ नैन चुवैं जस ओरी।
  धनि सूखै भरे भादौं माहाँ। अबहुँ न आएन्हि सींचेन्हि नाहा।।
  पुरबा लाग भूमि जल पूरी। आक जवास भाई तस झूरी।।
  थल जल भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक।
  धनि जोबन अवगाह महँ, दे बूड़त, पिउ! टेक ।। 6।।
  - ✓ बरहमासा वर्णन – भादो (भाद्रपद)
- लाग कुवार, नीर जग घटा। अबहूँ आउ कंत! तन लटा।।
  तोहि देखे, पिउ! पलुहै कया। उतरा चीत्त बहुरि करु मया।।
  चित्रा मित्र मीन कर आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा।।
  उआ अगस्त, हस्ति–घन गाजा। तुश्रय पलानि चढ़े रन राजा।।
  स्वाति–बूँद चातक मुख परे। समुद सीप मोती सब भरे।।

स्वर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरलहिं, खजन दिखाए।
भा परगास, काँस बन फूले। कंत न फिरे, बिदेसहि–भूले।।
बिरह हस्ति तन सालै, धाय करै चित चूर।
बेगि आइ, पिउ! बाहहु, गाजहु होइ सदूर ।। 7।।

- ✓ बारहमासा वर्णन – क्वार (आश्विन)
- ✓ अलंकार – विरोधाभास, उत्प्रेक्षा, रूपक

➢ कातिक सरद–चंद उजियारी। जग सीतल, हौं बिरहै जारी।।
चौदह करा चाँद परगासा। जनहुँ जरै सब धरति अकासा।।
तनम न सेज करै अगिदाहू। सब कहँ चंद, भएउ मोहि राहू।।
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौं घर जाही कंत पियारा।।
अबहूँ निठुर! आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।।
सखि झूमक गावैं अँग मोरी। हौं झुरावँ, बिछुरी मोरि जोरी।।
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूरा। मो कहँ बिरह, सवति दुःख दूजा।।
सखि मानैं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि।। 8।।

- ✓ बारहमासा वर्णन – कार्तिक
- ✓ अलंकार – विरोधाभास, उत्प्रेक्षा, रुपक
- ✓ परब, देवरी–ठेठ अवधी के शब्द
- ✓ छार सिर मेलि – मुहावरा है

➢ अगहन दिवस घटा, निसि बाढ़ी। दूभर रैनि, जाइ किमी गाढ़ी ?।।
अब धनि बिरह दिवस भा राती। जरौं बिरह जस दीपक–बाती।।
काँपै हिया जनावै सीऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ।।
घर घर चीर रचे सब काहू। मोर रूप–रँग लेइगा नाहू।।
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै, फिरै रँग सोई।।
बज्र–अगिनि बरहिनि हिय जारा। सुलुगि सुलुगि दगधै होइ छारा।।
यह दुःख दगध न जानै कंतू। जोबन जनम करै भसमंतू।।
पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा हे भौरा! हे काग!
सो धनि बिरहै जरि मुई तेहि क धुवाँ हमह लाग।। 9।।

- ✓ बारहमासा वर्णन – अगहन (मार्गशीर्ष)
- ✓ अलंकार–उत्प्रेक्षा, उपमा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास

➢ पूस जाड़ थर थर तन काँपा। सुरुज जाइ लंका–दिसि चाँपा।
बिरह बाढ़ दारुन भा सीऊ। कँपि कँपि मरौं, लेइ हरि जीऊ।।
कंत कहाँ, लागौं औहि हियरे। पंथ अपार, सूझ नहिं नियरे।।
सौंर सपेती आवै जूड़ी। जानहु सेज हिवंचल बूड़ी।।
चकई अकेलि साथ नहिं सखी। कैसे जियै बिछोही पखी।।
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा। जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा।।
रकतढुरा माँसू गरा, हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, पीउ समेटहि पंख ।। 10।।

- ✓ बारहमासा वर्णन – पूस (पौष)
- ✓ अलंकार–उत्प्रेक्षा, रूपक, पुनरुक्ति प्रकाश

➢ लागेउ माघ परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला।।
पहल पहल तन रूई साँपै। हहरि अधिकौ हिय काँपै।।
आइ सूर होइ तपु, रे नाहा। तोहि बिनु जाड़ न छूटै माहा।।
एहि माँह उपजै रसमूलू। तूँ सौ भौंर मोर जोवन फूलू।।
नैन चुवहिं जस महवट नीरु। तोहि बिनु अंग लाग सर चीरू।।
टप टप बूँद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला।।
केहि क सिंगार, को पहिरु पटोर ?। गीउ न हार, रही होइ डोरा।।
तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल।। 11।।

- ✓ बारहमासा वर्णन – माघ

➢ फागुन पवन झकोरा बहा। जौगुन सीउस जाइ नहिं सहा।।
तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा।।
तरिवरझरहिं, झरहिं बन ढाखा। भई ओनंत फूलि फरि साखा।।
करहिं बनसपति हिये हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू।।
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहिं तन लाइ दीन्हि जस होरी।।
जौ पै पीउ जरत अस पावा। जरत मरत मोहिं रोष न आवा।।
राति दिवस बस यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत अब तोरे।।
यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन! उड़ाव'।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाव ।। 12।।

✓ बारहमासा वर्णन – फागुन (फाल्गुन)

✓ चाँचरि – फागुन में गाए जाने वाला श्रृंगारिक लोक नृत्य–गीत

➢ चैत बसंता होइ धमारी। मोहिं लेखे संसार उजारी।।
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौं बन ढारै।।
बूड़ि उठे सब तरिवर–पाता। भीजि मजीठ, टेसु बन राता।।
बौरे आम फरै अब लागै। अबहुँ आउ घर, कंत सभागे।।
सहस भाव फूलीं बनसपती। मधुकर घूमहिं सँवरि मालती।।
मोकहँ फूल भए सब काँटे। दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे।।
फरि जोबन भए नारँग साखा। सुआ बिरह अब जाइ न राखा।।
घिरिनि परेवा होइ पिउ! आउ बेगि परु टूटि।
नारि पराए हाथ है, तोहि बिनु पाव न टुटि।। 13।।

✓ बारहमासा वर्णन – चैत्र

✓ 'मोहिं लेखे संसार उजारी', 'जस लागहिं चाँटे' मुहावरे हैं

✓ अलंकार–उपमा व रूपक

➢ भा बैसाख तपनि अति लागी। चोआ चीर चँदन भा आगी।।
सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह–बजागि सौंह रथ हाँका।।
जरत बजागिनि करु, पिउ! छाहाँ। आइ बुझाठ, अँगारन्ह माहाँ।।
तोहि इरसन होइ सीतल नारी। आइ ओगि तें करु फुलवारी।।
लागिउँ जरै जरै, जस भारू। फिरि भूँजेसि भूँजैसि, तजिउँ न बारू।।
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई।।
बिहरत हिया करहु, पिउ टेका। दीठि–दवँगरा मेरवहु एका।।
कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गएउ सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जौ पिउ सींचै आइ।। 14।।

✓ बारहमासा वर्णन – वैशाख

✓ सरवर हिया, दीठि दवँगरा–रूपक अलंकार

➢ जेठ जरै जग, चलै लुवारा। उठहिं बवंडर परहिं अँगारा।।
बिरह गजि हनुवँत होइ जागा। लंका–दाह करै तनु लागा।।
चारिहु पवन झकोरै आगी। लंका दाहि पलंका लागी।।
दहि भइ साम नही कालिंदी। बिरहक आगि कठिन अति मंदी।।
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ, मरौं दुःख बाँधी।।
अधजर भइउँ, माँसु तन सूखा। लागेउ बिरह काल होइ भूखा।।
माँस खाइ सब हाड़न्ह लागै। अबहुँ आउ, आवत सुनि भागै।।
गिरि, समुद्र, ससि, मेघ रवि, सहि न सकहिं वह आगि।
मुहमद सती सराहिए, जरै जो अस पिउ लागि।। 15।।

✓ बारहमासा वर्णन – जेठ (ज्येष्ठ)

✓ 'लंका दाहि पलंका लागी'–लोकोक्ति प्रयोग

✓ अलंकार–उपमा व रूपक

- तपै लागि अब जेठ असाढ़ी। मोहि पिउ बिनु छाजनि भइ गाढ़ी।।
  तन तिनउर भा, झूरौ खरी। भइ बरखा, दुख आगति जरी।।
  बंध नाहिं औ कंध न कोई। बात न आव, कहौं का रोई ?।।
  साँठि नाठि, जग बात को पूछा ? बिम जिउ फिरै मूँज–तनु छूँछा।।
  भई दुहेली टेक बिहूनी। भॉम नाहिं उठि सकै न थूनी।।
  बरसै मेघ चुवहिं नैनाहा। छपर छपर होइ रहिं बिनु नाहा।।
  कौरौं कहाँ ठाट नव साजा। तुम बिनु कत न छाजनि छाजा।।
  अबहूँ मया–दिस्टि कर, नाह नितुर। घर आउ।
  मँदिर उजार होत है, नव कै आई बसाउ।। 16।।
  - ✓ बारहमासा वर्णन – आषाढ़
  - ✓ इस पद में दो संदर्भ हैं नागमती की देह तथा छप्पर का
- रोड़ गँवाए बारह मासा। सहस सहस दुःख एक एक साँसा।।
  तिल तिल बरख परि जाई। पहर पहर जुग जुग न सेराई।।
  सो नहिं आवैं रूप मुरारी। जासौं पाव सोहाग सुनारी।।
  साँझ भए झुरि झुरि पथ हेरा। तोला माँसु रही नहीं देहा।।
  रकत न राह बिरह तन गरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा।।
  पाय लागि जोरै घनि हाथा। जारा नेह, जुड़ावहु, नाथा।
  बरस दिवस धनि रोइ कै, हारि परी चित झखि।
  मानुष घर घर बूझि कै, बूझै निसरी पखि।। 17।।
  - ✓ सो नहिं आवै रूप मुरारी। जासौं पाव सोहाग गुनारी 11–श्लेष अलंकार (श्लेष शब्द सोन, रूप, सुहाग, सुनारी आदि)
- भई पुछार, लीन्ह बनबासू। बैरिनि सवति दीन्ह चिलबाँसू।।
  होइ खर बान बिरह तनु लागा। जौ पिउ आवै उड़हि तौ कागा।।
  हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौ। कौन परवा ?।।
  धौरी पंडुक कहु पिउ कठँ लवा। करै मेराव सोइ गौरवा।।
  कोइल भई पुकारति रही। महरि पुकारे 'लेइ लेइ दही'।।
  पेड़ तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठि बिरह कटनंसा।।
  जेहि पंखी जाइ जरि, तरिंवर होइ निपात।। 18।।
  - ✓ श्लेष अलंकार की सुंदर योजना– पूरे कड़वक में एक अर्थ नागमती की विरह दशा को व्यंजित करता है तो दूसरा अर्थ जायरी के पक्षी–ज्ञान का परिचय देता है।
  - ✓ श्लेष के साथ अतिशयोक्ति अलंकार भी है।
- कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रकत आँसु घुघुची बन बोई।।
  भइ करमुखी नैन तन राती। को सेराव ? बिरहा दुःख ताती।।
  जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनबासी। तहँ तहँ होइ घुँघुचि कै रासी।।
  बूँद बूँद महँ जानहुँ जीऊ। गुंजा गूँजि करै 'पिउ पीऊ'।।
  तेहि दुःख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते।।
  राते बिब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूँ।।
  देखौ जहाँ होइ सोइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता ?।।
  नहिं पावस ओहि देसराः नहिं हेवंत बसंत।
  ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत।। 19।।

सुरदास भ्रमरगीत सार (संपादक–रामचंद्र शुक्ल)

महाकवि सूर कृत 'सूरसागर' के दशम स्कंध में 'भ्रमरगीत' की रचना है। 'भ्रमरगीत सार' के संपादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा उप–संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र हैं। इस पुस्तक में कुल 400 पद हैं। पुस्तक में वक्तव्य और आलोचना रामचंद्र शुक्ल तथा आमुख विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है। (भ्रमरगीत संबंधी विस्तृत जानकारी कृष्णभक्ति वाले अध्याय में दी गई है।)

राग केदार

गोकुल सबै गोपाल–उदासी।
जोग–अंग साधत जे ऊधो ते सब बसत ईसपुर कासी।।
यद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहति चरननि रसरासो।
टपनी सीतलताहि न छाँडत यद्यपि है ससि राहु–गरासी।।
का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम भजन तजि करत उदासी।
सुरदास ऐसी को विरहिन माँ गति मुक्ति तजे गुनरासी ?।।

- योग के 8 नियम – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि
- अलंकार – श्लेष,

राग धनाश्री

जीवन मुँहचाही को नीको।
दरस परस दिन रात करति है कान्ह पियारे पी को।।
नयनन मूँदि–मूँदि किन देखौ बँध्यो ज्ञान पोथी को।
आछे सुंदर स्याम मनोहर और जगत सब फीकों।।
सुनौ जोग को कालै कीजै जहाँ ज्यान है जी को ?
खाटी मही नहीं रुची मानै सूर खबैया घी का।।

- 'असूया' संचारी भाव (ईर्ष्याभाव)
- कुब्जा के प्रति ईर्ष्या भाव
- अलंकार – वक्रोक्ति

राग काफी

आयो घोष बड़ो व्यापारी।
लादि खेप गुन ज्ञान–जोग की ब्रज में आन अतारी।।
फाटक दैकर हाटक माँगत भोरै निपट सुधारी।
धुर ही तें खोटो खायो है लये फिरत सिर भारी।।
ठनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी ?
अपनों दुध छाँडि को पीवै खार कूप को पानी।।
ऊधो जाहु सबार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ।
मुँहमाँग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ।।

- खेप गुन ज्ञान–जोग –रूपक अलंकार
- प्रभु साहुहि – रूपक अलंकार
  जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
  यह ब्योपार तिहारो ऊधो! ऐसोई फिरि जैहै।।
  जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
  दाख छाँड़ि कै कटुक निंबौरी को अपने मुख खैहै ?
  मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल दै है।
  समरदास प्रभु गुनहि छाँड़ि कै को निर्गुन निबैहै ?।।
- जोग ठगौरी – रूपक अलंकार
- पूरे पद में वक्रोक्ति अलंकार
  जो ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
  यह ब्योपार तुम्हारो ऊधो! ऐसोई फिरि जैहै।।
  जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
  दाख छाँड़ि कै कटुक निंबौरी को अपने मुख खैहै ?
  मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल दै है।
  सूरदास प्रभु गुनहि छाँड़ि कै को निर्गुन निबैहै ?
- जोग ठगौरी' – रूपक अलंकार
- पूरे पद में वक्रोक्ति अलंकार

राग मलार

हमरे कौन जोग व्रत साधै ?
मृगत्वच, भस्म अधारि, जटा को को इतनौ अवराधै ?
जाकी कहूँ थाह नहिं पैए अगम, अपार, अगाधै।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधै ?
असन पवन बिभूति मृगछाला ध्याननि को अवराधै ?
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठि को बाँधै ?।।

- 'गिरिधर' लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधै– मुहावरे का प्रयोग
- अलंकार – काकुवक्रोक्ति

राग धनाश्री

हम तो दुहूँ भाँति फल पायो।
को ब्रजनाथ मिलैं तो नीको, नातरु जग जस गायौ।।
कहँ बै कमला के स्वामी संग मिल बैठीं इक पाँती।।
निगमध्यान मुनिज्ञान अगोचर, ते भए घोषनिवासी।
ता ऊपर अब साँच कहो धौं मुक्ति कौन की दासी ?
जोग–कथा, पा लागों ऊधो, ना कहु बारंबार।
सूर स्याम तजि और भजै जो ताकी जननी छार।।

- 'सूर स्याम तजि और भजै जो ताकी जननी छार' – लोकोक्ति अलंकार
- कृष्ण के विष्णु अवतार का संकेत

राग कान्हरो

पूरनता इन नयनन पूरी।
तुम जो कहत स्रवननि सुनि समुझत, ये याही दुःख मरति बिसूरी।
हरि अंतर्यामी सब जानत बुद्धि विचारत बचन समूरी।
वै रस रूप रतन सागर निधि क्यों मनि पाय खवावत धूरी।।
रहु रे कुटिल, चपल, मधु लंपट, कितव सँदेस कहत कटु कूरी।
कहँ मुनिध्यान कहाँ ब्रजयुवती! कैसे जात कुलिस करि चूरी।।
देखु प्रगट सरिता, सागर, सर, सीतल सुभग स्वाद रुचि रूरी।
सूर स्वातिजल बसै जिस चातक चित्त लागत सब झूरी।।

- 'वै रस रूप रतन सागर निधि क्यों मनि पाय खवावत धूरी' – लोकोक्ति का प्रयोग
- 'कहँ मुनिध्यान कहाँ ब्रजयुवती! कैसे जात कुलिस करि चूरी' – निदर्शना अलंकार

राग धनाश्री

कहतें हरि कबहूँ न उदास।
राति खवाय पिवाय अधररस क्यों बिसरत सो ब्रज को बास।।
तुमसों प्रेम कथा को कहिबो मनहुं काटिबो घास।
बहिरो तान–स्वाद कहँ जानै, गूँगो–बात–मिठास।।
सुनु री सखी, बहुरि फिरि ऐहैं वे सुख बिबिध बिलास।
सूरदास ऊधो अब हमको भयो तेरहों मास।।

- 'तुमसों प्रेम कथा को कहिबो मनहुं काटिबो घास'

मुहावरे का प्रयोग

- 'बहिरो तान–स्वाद कहँ जानै, गूँगो–बात–मिठास' – उदाहरण अलंकार
- स्मृति संचारी भाव का उदाहरण
  तेरो बुरो न कोऊ मानै।
  रस की बात मधुप नीरस सुनु, रसिक होत सो जानै।।
  दादुर बसै निकट कमलन के, जन्म न रस पहिचानै।
  अलि अनुराग उड़न मन बाँध्यो कहे सुनत नहि कानै।।
  सरिता चलै मिलन सागर को कूल मूल द्रुम भानै।
  कायर वकै, लोह तें भजै, लरै जो सूर बखानै।।
- अलंकार – तुल्ययोगिता व श्लेष
  धर ही के बाढ़े रावरे।
  नाहिन मीत वियोगबस परे अनवउगे अति बावरे।।
  भुख मरि जाय चरै नहिं तिनुका, सिंह को यहै स्वभाव रे!
  स्रवन सुधा–मुरली के पोषे, जोग–जहर न खवाव रे!
  ऊधो हमहि सीख का दैहोद्य हरि बिनु अनत न ठाँव रे!
  सूरदास कहा लै कीजै थाही नदिया नाव रे।।
- 'धर ही के बाढ़े रावरे' – लोकोक्ति का प्रयोग
- अलंकार – रूपक, उदाहरण, अन्योक्ति

राग सोरठ

अटपटि बात तिहारी ऊधो सुनै सो ऐसी को है ?
हम अहीरि अबला सठ, मधुकर! तिन्हैं जोग कैसे सोहै ?
बूचिहि खुभी आँधरी काजर नकटी पहिरै बेसरि।
मुँडली पाटी पारन चाहै, कोढ़ अंगहि केसरि।।
बहिरी सों पति मतो करै सो उतर कौन पै पावै ?
ऐसा न्याव है ताको ऊधो जो हमैं जोग सिखावै।।
जो तुम हमको लाए कृपा करि सिर चढ़ाय हम लीन्हे।
सूरदास नरियर जो विष को करहि बंदना कीन्हें।।

- 'सूरदास नरियर जो विष को करहि बंदना कीन्हें' मुहावरे का प्रयोग

राग सारंग

हरि काहे के अंतर्यामी ?
जौ हरि मिलत नहीं यहि औसर, अवधि बतावत लामी।।
अपनी चोप जाम उठि बैठे और निरस बेकामी।
सो कहँ पीर पराई जानै जो हरि गरुड़गामी।।
आई उधरि प्रीति कलई सी जैसे खाटी आमी।
सूर इते पर अनख मरित हैं, ऊधे पंवत मामी।।

- उलाहना भाव का चित्रण
  बिलग जनि मानहु, ऊधौ प्यारे!
  वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।।
  तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
  तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे।।
  मानहु नील माट तें काढ़े लै जमुना ज्यों पखारे!
  ता गुन स्याम भई कालिंदी सूर स्याम–गुन न्यारे।।
- अलंकार – रूपक, अनुप्रास

राग सारंग

तुम जो कहत संदेसो आनि।
कहा करौं वा नंदनन्दन सों होत नहीं हितहानि।।
जोग–जुगुति किहि काज हमारे जदपि महा सुखखानि ?
सने सनेह स्यामसुंदर के हिलि मिलि कै मन मानि।।
सोहत लोह परसि ज्यों सुबरन बारह बानि।
पुनि वह चोप कहाँ चुम्बक ज्यों लटपटाय लपटानि।।
रूपरहित नीरासा निरगुन तनगमहु परत न जानि।
सूरदास कौन बिधि तासों अब कीजै पहिचानि।।

- 'सोहत लोह परसि जयों बुबरन बारह बानि' – उदाहरण अलंकार
- 'नीरसारा निरगुन निगमहु' – अनुप्रास अलंकार

राग धनाश्री

हम तौ कान्ह केलि की भूखी।
कैसे निरगुन सुनहि तिहारो बिरहिनी बिरह–बिदूखी ?
कहिए कहा यहौ नहिं जानत काहि जोग है जोग।
पा लागों तुमहीं सो वा पर बसत बावरे लोग।।
अंजन, अभरन, चीर, चारु बरु नेक आप तन कीजै।
दंड कमंडल, भस्म अधारी जो जुवतिन को दीजै।।
सूरदास देखि दृढ़ता गोपिन की ऊधो यह ब्रत पायो।
कहै 'कृपानिधि हो कृपाल हो! प्रेमै पढ़न पठायो।।

- 'कहिए कहा यहौ नहिं जानत काहि जोग है जोग' – यमक अलंकार
- लक्षणा शब्दशक्ति
  अँखियाँ हरि–दरसन की भूखी।
  कैसे रहें रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी।।
  अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहिं झूखी।
  अब इन जोग–सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी।।
  बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
  सूर सिकत हटि नाव चलायो ये सरिता हैं सूखी।।
- 'सूर सिकत हटि नाव चलायो ये सरिता हैं सूखी' – निदर्शना अलंकार

राग सारंग

जाय कहौ बूझी कुसलात।
जाके ज्ञान न होय सो मानै कहि तिहारी बात।।
कारो नाम, रूप पुनि कारो, कारे अंग सखा सब गात।
जो पै भले होत कहुँ तौं कत बदलि सुता लै जात।
हमको जोग, भेग कुबजा को काके हिये समात।
सूरदास सेए तो पति कै पाले जिन्ह तेही पछितात।।

- उपालम्भ पद्धति का प्रयोग
  कहा। लौं कीजै बहुत बड़ाई।
  अतिहि अगाध अपार अगोचर मनसा तहाँ न जाई।।
  जल बिनु तरँग, भीति बिनु चित्रन, बिन चित ही चतुराई।
  अब ब्रज में अनरीति कछू यह ऊधो आनि चलाई।।
  रूप न रेख, बदन, बपु जाके संग न सखा सहाई।
  ता निर्गुन सों प्रीति निरंतर क्यों निब है, री माई?
  मन चुभि रही माधुरी मूरति रोम–रोम अरुझाई।
  हौं बलि गई सूर प्रभु ताके जाके स्याम सदा सुखदाई।।
- 'जल बिनु तरँग, भीति बिनु चित्रन, बिन चित ही चतुराई' – विभावना अलंकार

राग मल्हार

काहे को गोपीनाथ कहावत ?
जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत ?
सपने की पहिचानि जानि कै हमहिं कलेक लगावत।
जो पै स्याम बूबरी रीझे सो किन नाम धरावत ?
ज्यों गतराज काज के औसर औरे दसन दिखावत।
कहन सुनन को हम हैं ऊधो सूर अनत बिरमावत।।

- 'ज्यों गतराज काज के औसर औरे दसन दिखावत' – लोकोक्ति अलंकार
  अब कत सुरति होति है, राजन् ?
  दिन दस प्रीति करी स्वारथ–हित रहत आपने काजन।।
  सबै अयानि भईं सुनि मुरली ठगीं कपट की छाजन।
  अब मन भयो सिंधु के खग ज्यों फिरि फिरि सरत जहाजन।।
  वह नातो टूटो ता दिन तें सुफलकसुत–सँग भाजन।
  गोपीनाथ कहाय सूर प्रभु कत मारत हौ लाजन।।
- 'सिंधु के खग ज्यों' – उपमा अलंकार
- 'गोपीनाथ कहाय सूर प्रभु कत मारत हौ लाजन' – मुहावरे का प्रयोग

राग सोरठ

लिखि आई ब्रजनाथ की छाप।
बाँधे फिरत सीस पर ऊधौ देखत आवै ताप।।
नूतन रीति नंदनंदन की, घर–घर दीजत थाप।
हरि आगे कुब्जा अधिकारी, तातें हैं यह दाप।।
आए कहन जोग अवराधे बिगत–कथा की जाप।
सूर सँदेसो सुनि नहिं लागै कहौ कौन को पाप।।

- 'देखत आवै ताप' – मुहावरे का प्रयोग
- अलंकार – काकुवक्रोक्ति

राग सारंग

फिरि–फिरि कहा सिखावत बात ?
प्रातकाल उठ देखत ऊधो घर–घर माखन खात।।
जाकी बात–कहत हौ हमसों सो है हमसों दूरि।
ह्याँ है निकट जसोदानंदन प्रान–सजीवनभूरि।।
बालक संग लये दधि चोरत खात खवावत डोलत।
सूर सीस धुनि चौंकत नावहिं अब काहे न मुख बोलत ?

- 'फिरि–फिरि' – पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार
- 'सूर सीस' – अनुप्रास अलंकार

राग धनाश्री

अपने सगुन गोपालै माई! यहि बिधि काहे देत?
ऊधो की ये निरगुन बातैं मीठी कैसे लेत।।
धर्म, अधर्म कामना सुनावत सुख औ मुक्ति समेत।
काकी भूख गई मनलाडू सो देखहु चित चेत।
सूर स्याम तजि को भुस फटकै मधुप तिहारे हेत ?

- 'काकी भूख गई मनलाडू', 'को भुस फटकै' – लोकोक्तियों का प्रयोग
- 'सूर स्याम तजि को भुस फटकै मधुप तिहारे हेत' – काकुवक्रोक्ति अलंकार

राग सारंग

हमको हरि की कथा सुनाव।
अपनी ज्ञानकथा हो ऊधो! मथुरा हीलै गाव।।
नागरि नारि भले बूझैंगी अपने बचन सुभाव।
पा लागों इन बातनि, रे अलि! उनही जाय रिझाव।।
सुनि, प्रयिसखा स्यामसुंदर के जो पै जिय सति भाव।
हरिमुख अति आरत इन नयननि बारक बहुरि दिखाव।।
जो कोउ कोटि जतन करे, मधुकर, बिरहिनि और सुहाव ?
सूरदास मीनन को जल बिनु नाहिंन और उपाव।।

- अलंकार – निदर्शना

राग सारंग

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन बच क्रम नंदनंदन सों उर यह दृढ़ करि पकरि।।
जागत, सोबत, अपने सौंतुख कान्ह–कान्ह जक री।
सुनतहि लोग लगत ऐसा अलि! ज्यों करुई ककरी।।
सोई व्याधि हमें लै आए देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हैं लै दीजे जिनके मन चकरी।।

- हारिल – एक पक्षी जो प्रायः चंगुल में कोई लकड़ी या तिनका लिए रहता है।
- अलंकार – उपमा, अनुप्रास
  फिरि फिरि कहा सिखावत मौन ?
  दुसह बचन अति यों लागत उर ज्यों जाने पर लौन।।
  सिंगी, भस्म, त्वचामृग, मुद्रा अरु अबरोधन पौन।
  हम अबला अहीर, सठ मधुकर! घर बन जानै कौन।।
  यह मत लै तिनहीं उपदेसौ जिन्हैं आजु सब सोहत।
  सूर आज लौं सुनी न देखी पोत सूतरी पोहत।।
- 'फिरि फिरि' – पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार
- 'जारे पर लौन' – लोकोक्ति का प्रयोग

राग केदार

जानि चालो, अलि, बात पराई।
ना काउ कहै सुनै या ब्रज में नइ कीरति सब जाति हिंराई।।
बूझैं समाचार मुख ऊधो कुल की सब आरति बिसराई।
भले संग बसि भई भली मति, भले मेल पहिचान कराई।।
सुंदर कथ कटुक सी लागति उपजत उर उपदेश खराई।
उलटी नाव सूर के प्रभु को बहे जात माँगत उतराई।।

- 'भले संग बसि भई भली मति, भले मेल पहिचान कराई' – वक्रोक्ति अलंकार
- काकुवक्रोक्ति अलंकार का प्रयोग पूरे पद में।

राग मल्हार

याकी सीख सुनै ब्रज को, रे ?
जाकी रहनि कहनि अनमिल, अलि, कहत समुझि अति थोरे।।
आपुन पद–मकरंद सुधारस, हृदय रहत नित बोरे।
हमसों कहत बिरस समझौ, है गगन कूप खनि खोरे।।
घान को गाँव पयार ते जानौ ज्ञान विशयरस भोरे।
सूर सो बहुत कहे न रहै रस गूलर को फल फोरे।।

- 'घान को गाँव पयार ते जानौ' – लोकोक्ति व लक्षणा प्रयोग
- 'गूलर को फल फोरे' – लोकोक्ति प्रयोग

निरखत अंक स्यामसुंदर के बारबार लावति छाती।
लोचन–जल कागद–मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।।
गोकुल बसत संग गिरिधर के कबहुँ बयारि लगी नहिं ताती।
तब की कथा कहा कहौं, ऊधो, जब हम बेनुनाद सुनि जाती।।
हरि के लाड़ गनति नहिं काहू निसिदिन सुदिन रासरसमाती।
प्राननाथ तुम कब धौं मिलोगे सूरदास प्रभु बालसँघाती।।

- 'स्याम स्याम' – यमक अलंकार

राग सारंग

अपनी सी कठिन करत मन निसिदिन।
कहि कहि कथा, मधुप, समुझावति तदपि न रहत नंदनंदन बिन।।
बरजत श्रवन सँदेस, नयन जल, मुख बतियाँ कछु और चलावत।
बहुत भांति चित धरत निठुरता सब तजि और यहै जिय आवत।।
कोट स्वर्ग सम सुख अनुमानत हरि–समीप समता नहिं पावत।
थकित सिंधु–नौका के खग ज्यों फिरि फिरि फेर वहै गुन गावत।।
जे बासना न बिदरत अंतर तेइ–तेइ अधिक अनूअर दाहत।
सूरदास परिहरि न सकत तन बारक बहुरि मिल्यो है चाहत।।

- अलंकार – अनुप्रास, उपमा, उदाहरण, पुनरुक्ति प्रकाश

राग बिलावल

काहे को रोकत मारग सूधो!
सुनहु मधुप! निर्गुन–कंटक तें राजपंथ क्यों रूधो ?
कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कैं कही स्यामधन जू धौ ?
बेद पुरान सुमृति सब ढूँढो जुवतिन जोग कहूँ घौं ?
ताको कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधौ।।

- 'निर्गुन–कंटक तें राजपंथ' – रूपक, रूपकातिशयोक्ति अलंकार
- 'बेद पुरान सुमृति सब ढूँढौ जुवतिन जोग कहूँ घौं ? – वक्रोक्ति अलंकार

राग सारंग

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलासी।।
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन है ह्वै रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी।

राग मलार

ब्रजजन सकल स्याम–ब्रतधारी।
बिन गोपाल और नहिं जानत आन कहैं व्यभिचारी।।
जोग मोट सिर बोझ आनि कैं, कत तुम घोष उतारी ?
इतनी दूरि जाहु चलि कासी जहाँ बिकति है प्यारी।।
यह संदेश नहिं सुनै तिहारो, है मंडली अनन्य हमारी।
जो रसरीत करी हरि हमसौं सो कत जात बिसारी ?
महामुक्ति होऊ नहिं बूझै, जदपि पदारथ चारी।
सूरदास स्वामी मनमोहन मूरति की बलिहारी।।

- प्यारी – महँगी (पंजाबी भाषा का शब्द)

राग धनाश्री

कहति कहा ऊधो सों बौरी।
जाको सुनत रहे हरि के ढिग स्यामसखा यह सो री!
हमको जोग सिखवन आयो, यह तेरे मन आवत ?
कहा कहत री! मैं पत्यात री नहीं सुनी कहनावत ?
करनी भली भलेई जानै, कपट कुटिल की खानि।
हरि को सखा नहीं री माई! यह मन निसचय जाति।।
कहाँ रास–रस कहाँ जोग–जप? इतना अंतर भाखत।
सूर सबै तुम कत भइँ बौरी याकी पति जो राखत।।

- 'करनी भली भलेई जानै, कपट कुटिल की खानि' – लोकोक्ति का प्रयोग
- माई का अर्थ सखी है। (ब्रज भाषा का शब्द)

राग धनाश्री

प्रकृति जोई जाके अंग परी।
स्वान –पूंछ कोटिक जा लागौ सूधि न काहु करी।।
जैसे काग भच्छ नहिं छाड़ै जनमत जौन धरी।
धोये रंग जात कहु कैसे ज्यों कारी कमरी?
ज्यों अहि डसत उदर नहिं पूरत ऐसी धरनी धरी।
सूर होउ सो होउ सोच नहिं तैसे हैं एउ री।।

- 'स्वान–पूंछ कोटिक जा लागौ सूधि न काहु करी' – अर्थांतरन्यास के माध्यम से लोकप्रसिद्ध उक्ति का प्रयोग
- भच्छ–भक्ष्य (भक्ष्य का प्रयोग अभक्ष्य के अर्थ में हुआ है।)

तुलसीदास (रामचरितमानस–उत्तरकाण्ड)

- उत्तरकाण्ड गोस्वामी तुलसीदास के महाकाव्य श्रीरामचरितमानस के सात काण्डों में अंतिम है।
- उत्तरकाण्ड की कथावस्तु के दो भाग हैं। आरंभ में मूल कथा है। राम अयोध्या पहुँचते हैं जहाँ उनका भव्य स्वागत होता है। वेद–स्तुति एवं शिव–स्तुति के साथ उनका राज्याभिषेक किया जाता है। वानरों को विदा किया जाता है। रामराज्य एक आदर्श राज्य के रूप में उपस्थित होता है।
- इसके बाद उत्तरकाण्ड में तुलसीदास का चिंतन–पक्ष उपस्थित हुआ है। यह कथा अपने युग की समस्याओं और मानव–जीवन की शाश्वत समस्याओं के समाधान से जुड़ती है।
- उत्तरकाण्ड के अंतिम भाग का हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व है क्योंकि इसमें तुलसी का भक्ति और ज्ञान संबंधी चिंतन विस्तार में अभिव्यक्त हुआ है।
- वस्तुतः तुलसीदास ने उत्तरकाण्ड के उत्तर–भाग में भुशुण्डि–गरुड़ की कथा विशिष्ट उद्देश्य से रखी है। इस कथा के माध्यम से तुलसीदास ने ईश्वर के अवतार एवं उसकी लीला का मर्म, मानव–जन्म का महत्व, मानव का दुःख, संत–असंत के लक्षण, पाप और पुण्य आदि पर विचार किया है। अपने युग की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कलियुग–वर्णन, शैव एवं वैष्णव मतों का समन्वय, निर्गुण–सगुण विवाद आदि प्रसंगों को इसमें शामिल किया है।
- हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए।।
  पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई।।
  सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं।।
  समाचार पुरबारिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए।।
  दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगल मूला।।
  भरि भरि हेम थाल भामिनी। गावत चलिं सिंधुरगामिनी।।
  जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं।।
  एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई।
  अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई समल सोभा कै खानी।।
  बहई सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा।।
  दोहा– हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत। चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत।।
  बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
  देखि मधुर सुर हरशित करहिं सुमंगल गान।। 3।।
- आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा। बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।।
  धाई धरे गुरु चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह।।
  भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया।।
  सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा।।
  गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज।।
  परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए।।
  स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े।।

छन्द

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं। दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं।।
अति प्रेम प्रभु सब मातु भैटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे। गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे।।

दोहा

भेंटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि।।
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिब पाइ।
कैकई कहँ पुनि पुनि मिले मन का छोभ न जाइ।।

- फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।।
  खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।।
  सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।
  लता बिपटप मागें मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं।।
  ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भई कृतजुग कै करनी।।
  प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।।
  सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।
  सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।
  सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा।।

दोहा

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज।

- जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।।
  पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका।।
  जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी।।
  अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।।
  बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ।।
  मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा।।
  धरम तड़ग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिध नाना।।
  सुख संतोश बिराग बिबेका। बिगत सोक एक कोक अनेका।।

दोहा

यह प्रताप रबि जाकें उर जब करई प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहें ते पावहिं नास।। 3।।

- भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा।।
  सुंदर उपवन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए।।
  जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए।।
  ब्रह्मानन्द सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना।।
  रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा।।
  आसा बचन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं।
  तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी।।
  रामकथा मुनिबर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी।।

दोहा

देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह।।

- एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
  नर तनु पाइ बिशय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहिं।।
  ताहि कबहुँ भल कहई न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई।।
  आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।।
  फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
  कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सेही।।
  नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
  करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

दोहा

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आतमहन गति जाइ।।

- कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा।।
  सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई।।
  मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।।
  बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई।।
  बेर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा।।
  अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिगयानी।।
  प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।।
  भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई।।

दोहा

मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता पद मोह।
ता कर सुख सोई जानई परानंद संदोह।।

➢ निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना।।
रावन बध मंदोदरि सोका। राज बिभीषन देव असोका।।
सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी।।
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपा निकेता।।
जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए।।
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनत नृपनीति अनेका।।
कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी।।
सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन मरम उछाहा।।

सोरठा

गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक।।
मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ नरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन।।

➢ राम कृपा अपनि जड़ताई। कहउँ खगेस सुनहु मन लाई।।
जब जब राम मनुज तनु धरहिं। भक्त हेतु लीला बहु करहिं।।
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बाल चरित बिलोकि हरषाऊँ।।
जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरश पाँच तहँ रहौं लोभाई।।
इष्ट देव मम बालक रामा। शोभा बपुष कोटि सत कामा।।
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी।।
लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखउँ बाल चरित बहु रंगा।।

दोहा

लरकाई जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाऊँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ कर खाऊँ।।
एक बार अतिसय सब चरित किए रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर।।

➢ एवमस्तु कहि रघुनायक। बोले बचन परम सुखदायक।।
सुनु बायस तैं सहज सयाना। कहो न गांगसि अस बरदाना।।
सब सुख खानि भगति तैं माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी।।
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं।।
रीझेउँ देख तोरि चतुराई। मांगेहु भगति मोहि अति भाई।।
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें।
भगति ज्ञान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा।।
जानब तैं सबहीं कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा।।

दोहा

माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापहहिं तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि।।
मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग।
कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग।।

➢ काल बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरैं।।
तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरशहिं धरनीं बए न जामहिं धान।।
छंद– अबला कच भूषन भूरि छुआ। धनहीन दुखी ममता बहुधा।।
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता।।
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारन हीं।।

लघु जीवन संबतु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा।।
कलिकाल बिहाल किये मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा।।
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता।।
इरिशा पुरुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही सामता बिगता।।
सब लोग बियोग बिसोक हए। नरनाश्रम धर्म अचार गए।।
दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी।।
तनु पोषक नार नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे।।

दोहा

सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।
गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार।।
कृत जुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोगा।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।

- पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ।।
  नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी।।
  प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा।।
  बड़ दुःख कवन कवन सुख भारी। सोइ संछेपहिं कहहु बिचारी।।
  संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु।।
  कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला।।
  मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई।।
  तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीति।।
  नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।।
  नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी।।
- राम कथा गिरिजा मैं बरनी। कलि मल समनि मनोमल हरनी।।
  संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं श्रुति सूरी।।
  येहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना।।
  अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ एहिं मारग सोई।।
  मनोकामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा।।
  कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं।।
  सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई।।
  नाथ कृपाँ मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा।।

दोहा

मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस।।

बिहारी सतसई (संपादक– जगन्नाथदास रत्नाकर)

बिहारी ने सिर्फ एक काव्यग्रंथ की रचना की जिसे 'सतसई' या 'बिहारी सतसई' कहा जाता है। सतसई 'गाथा सप्तशती' तथा 'आर्या सप्तशती' परंपरा की ही रचना है जिसमें कुल 700 छंद होते हैं। 'बिहारी सतसई' छंदों की संख्या को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं– इसमें 713, 716, 719 छंद माने गए हैं। यही एकमात्र ग्रंथ बिहारी की ख्याति का आधार है। 'बिहारी रत्नाकार' (जगन्नाथ दास नत्नाकार) द्वारा लिखित टीका है जिसमें 713 दोहे हैं। इनकी कविताओं में चमत्कार की कितनी क्षमता है, यह **जॉर्ज ग्रियर्सन** के इस कथन से पता लगता है ''पूरे यूरोप में एक भी कवि बिहारी की बराबरी नहीं कर सकता।''

- मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
  जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित–दुति होई।।
- अपने अँग के जानि कै जोवन–नृपति प्रबीन।
  स्तन, नयी, नितंब की बड़ौ इजाफा कीन।।
- सालति है नटसाल सी, क्यौं हूँ निकसति नाँहि।
  मनमथ–नेजा–नोक सी खुभी खुभी जिय माँहि।।
- हौं रीझी, लखि रीझिहौ छबिहिं छबीले लाल।
  सोनजूही सी ह्वोति दुति–मिलत मालती माल।।
- फिरि फिरि चितु उत हीं रहतु, टुटी लाज की लाव।
  अंग–अंग–छबि–झौंर मैं भयो भौंर की नाव।।
- चितई ललचौहें चखनु डटि घूँघट–पट छाँह।
  छल सौं चली छुवाइ कै छिनकु छबीली छाँह।।

- पलनु पीक, अंजनु अधर, धरे महावरु भाल।
  आजु मिले, सु भली करी; भले बने हौ लाल।।
- तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
  तू मोहन कैं उर बसी ह्वै उरबसी–समान।।
- कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
  भरे भैन मैं करत हैं, नैननु हीं सब बात।।
- लखि गुरुजन–बिच कमल सौं सीसु छुवायौ स्याम।
  हरि–सनमुख करि आरसी हियैं लगाई बाम।।
- पाइ महावर दैन कौं नाइनि बैठी आइ।
  फिरि फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ।।
- नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं बिकासु इहिं काल।
  अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगैं कौन हवाल।।
- लाल, तुम्हारे विरह की अगनि अनूप, अपार।
  सरसै बरसैं नीर हूँ, झर हूँ मिटै न झार।।
- मंगल बिंदु सुरंगं, मुखु ससि, केसरि आड़ गुरू।
  इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन–जगत।।
- पिय तिय सौं हँसि कै कह्यौ, लखैं दिठौना दीन।
  चंदमुखी, मुखचंदु तैं भलो चंद–समु कीन।।
- रससिंगार–मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
  अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु, नैन।।
- याकैं उर औरे कछू लगी बिरह की लाइ।
  पजरै नीर गुलाब कैं, पिय की बात बुझाइ।।
- डारी सारी नील की ओट अचूक, चुकैंन।
  मो मन–मृगु करबर गहैं अहे! अहेरी नैन।।

घनानंद कवित्त (संपादक– विश्वनाथ मिश्र)

- लाजनि लपेटि चितवनि भेद–भाय–भ्री,
  लसति ललित लोल चख तिरछानि मैं।
  छवि को सदन गोरो भाल वदन, रुचिर,
  रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
  दसन–दमक फैलि हिमें मोती माल होति,
  पिय सो लड़कि पेम–पगी बतरानि मैं।
  आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल,
  अंगनि अनंग–रंग ढुरि मुरि जानि मैं।।
- झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि ह्वै।
  हँसि बोलन मैं छवि फूलन की वरषा, सर ऊपर जाति है ह्वै।
  लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
  अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहे मनौ, रूप अबै धर च्वै।।
- छवि को सदन मोद मंडित वदन–चंद
  तृशित चखनि लाल, कब धौं दिखायही।
  चटकोलो भेख करें मटकीकी भांति सों ही
  मुरली अधर धरें लटकत आयहो।
  लोचन ढुराय कछू मृदु मुसक्याय, नेह
  भोनो वतियानि लड़काय वतराय हो।
  विरह जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
  कृपानिधि, आनंद को घन वरसाय हो।।
- वहै मुस्क्यानि, वहै मृदु वतरानि, वहै
  लड़कीली दानि आनि उर में आरति है।
  वै गति लैन सो वजावनि ललित वैन,
  वहै होनि दैन, हियरा तें न टरति है।
  वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छवि,
  वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
  आनंदनिधान प्रानप्रीतम सुजानजू की,
  सुधि सब भांतिन सों वेसुधि करति है।।
- जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
  कैसे करि जिय की जरनि सो जताइयै।
  महा निरदई दई कैसे के जिवाऊँ जीव,
  वेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
  दुख को बखान करिवे कौं रसना कैं होति,
  ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
  रैन दिन चैन को न लेस कहूँ पैये भाग,
  आपने ही ऐसे दोश काहि धौं लगाइयै।।
- भोर तें साँझ लौं कानन ओर निहारति वावरी नेकु न हारति।
  सांझ तें भेर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।।
  जौ कहूँ भवतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति।।
  मोहन–मोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन कें उर आरति।।
- भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
  याही दुःख मैं जक लागी हाय हाय है।
  तुम तो निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
  मैं सूल सेलनि सो क्योंहूं ल भुलाय है।
  मीठे–मीठे बोल बोलि ठगी पहिलें तौ तव,
  अब जिय जारत कहौ धौं कौन न्याय है।
  सुनो है कै नाहीं, यह प्रगट कहावति जू,
  काहू कलपाय है सु कैसें कल पायहै।।
- हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
  नीर सनेहो कों लाय कलंक निरास है कायर त्यागत प्रानै।
  प्रीति की रीति सु क्यों समुझे जड़ मीत के पानि परे को प्रमानै।
  या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै।।
- प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ
  कैसे रहैं, प्रान जौ अनखि अरसायहौ।
  तुम तौ उदार दीन हीन आनि पर्‌यौ द्वार
  सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ।
  चातिक है रावरो अनोखो मोह आवरो
  सुजान रूप–बावरो, वदन दरसायहौ।
  विरह नसाय, दया हिय में बसाय, आय
  हाय! कब आनँद को घन बरसायहौ।।